मछलियां ठहरे तालाब की

श्रीहर्ष

सामयिक प्रकाशन, कलकत्ता

मुख्य वितरक : धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर

प्रकाशक :

सामयिक प्रकाशन
क्यू-10, 40/1 टैंगरा रोड,
कलकत्ता-700015

प्रथम संस्करण : 1987

आवरण : सन्नू हर्ष

मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MACHHALIYAN THAHARE TALAB KEE
(Poem) by Shreeharsh Rs. 25.00

मौसम की मार
खाकर भी
धरती की धड़कन
सुनने वाले
कानों को···



अपनी बात

आज के जटिल यथार्थ को विवेक के साथ कविता मे व्यक्त करना एक कर्त्तव्यनिष्ठ महत्वपूर्ण कार्य है। हमारे दैनिक जीवन को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवधारणाए जिस रूप मे प्रभावित करती हैं, उन्हे कलात्मकता के साथ कविता में प्रस्तुत करना कवि कर्म का मुख्य अंग है। सामाजिक जीवन जिन सामंती अधविश्वासों मे जकड़ा हुआ है और औद्योगिक विकास का सतही आधुनिकीकरण उसे सहलाकर मोटा बनाता है व परिवर्तनगामी शक्तियों को कमजोर बनाता है। इसका कारण विना किसी सार्थक सामाजिक परिवर्तन की कल्पना। आज विवेकशील व्यक्ति को विचित्र तरह के विरोधाभास की स्थिति से गुजरना पड रहा है। राजनैतिक, आर्थिक संकट जिस तीव्रता के साथ गहराता जा रहा है एव सजग व्यक्ति के समक्ष सामाजिक एवं सास्कृतिक संकट जिस रूप मे उपस्थित हो रहा है—यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसे संकट के समय जनवादी कविता का यह कर्तव्य है—इसके खिलाफ कला के हथियारों को धारदार बनाकर, मानवीय मूल्यों पर होने वाले प्रतिघातो को रोकने की चेष्टा करना।

सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए जीवत दर्शन दृष्टि का होना जरूरी है। जीवत दर्शन दृष्टि के अभाव मे यथास्थिति का पोषण ही अधिक होता है। जीवंत दर्शन हमे सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं को समझने के लिए एक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि देता है। हमारी स्वतंत्र चेतना का विकास कर हमें नागरिक अधिकारो की रक्षा करना सिखाता है। कविता के परिप्रेक्ष्य को व्यापकता प्रदान करता है।

जनवादी कविता जनसघर्षो से उपलब्ध जनवादी मूल्यों के माध्यम से नये सौंदर्य के प्रतिमानो की स्थापना के दौर से गुजर रही है।

काव्यगत सभी मूल्यों की रक्षा करते हुए जन-जीवन में आज के जटिल सामाजिक यथार्थ को सम्प्रेषित करना व उनकी कलात्मक रुचियों का परिष्कार करना, दूसरी तरफ जनसंघर्षों में फैलायी जाने वाली हताशा निराशा, यथास्थितिवाद, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता आदि को जड़ से काटना—यह कार्य बोधगम्य सहज भाषा द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

व्यापक दृष्टिकोण के साथ विषय वस्तु का चुनाव जनवादी कविता के लिए जरूरी है। शक्तिशाली कथ्य के साथ-साथ सधे हुए शिल्प का होना भी जरूरी है। जनजीवन में व्याप्त अंधविश्वासों का वैज्ञानिक दृष्टि से पुनः मूल्यांकन कर उसकी सार्थकता व निरर्थकता को सिद्ध करना आज की जनवादी कविता का दायित्व है।

समय की धड़कन पहचानते हुए अपने युग के एक-एक तेवर को सूक्ष्मता व गहराई के साथ परख कर अपने अनुभवों को समृद्ध करना जरूरी है। जीवन के गतिशील मुख्य प्रवाह से जुड़कर ही जीवंत कविता की रचना सम्भव है।

'मछलियां ठहरे तालाब की' मेरा चौथा काव्य-संग्रह है। मुझे विश्वास है, समझदार पाठक विवेकशील आलोचक, अपने स्वस्थ सुझावों से मेरी अगली काव्य-यात्रा को सफल बनाने में सहयोग करेंगे।

क्रम

फुसफुसाहट

फोन से चिपके नर्म होंठ
एक लम्बी दूरी पर फुसफुसा रहे थे
हँसी के हंगामे से
धरती के भीतर बिखरे सपनों में
मच रही थी उथल-पुथल
मैं बोलना चाहकर भी
उत्तर को दांतों में दबोचे
घूम रहा था
अपनी चुप्पी पर
बहुत गहरे उतर कर सोच रहा था ?
किसने कहा था —इस तरह टूट कर
भीतर से उदास होने के लिए ?
समय किसी को भी हँसकर
जीने की देता नही है
इजाजत···!

दिन-भर हवा में उड़ती धूल की तरह
भटक कर
शाम को फिर हँसने का इरादा
अखरता है शैतान समय को !
रात अपने वैनिटी बैग मे कैद करे
उसके पहले ही—मैं
नये शब्दों की तलाश में दौड़ता हूं
फुसफुसाहट और तेज हो जाती है।

6-1-84

समय की बदहवासी

धीरे-धीरे बिगड़े समय की
बदहवासी को—पीने की आदत
जीने का एक हिस्सा बन गई है।
पांव किस रास्ते पर चल रहे हैं
यह कोई नही जानता
लेकिन चल रहे हैं !
इन दिनों आदमी चाहकर भी
चीख नहीं सकता
पता नही किस सदी का खौफ
खा रहा है उसको !
आंखों के सामने ही
सब कुछ घटता देखकर
साध लेता है मौन !

अब तो किसी एक जगह
खड़े होकर
आसपास की दुनिया देखने में
लगने लगा है डर
पता नहीं कब सुरक्षा
उजाड़ देगी घर ?

यह वक्त—जिसका लेखा-जोखा
इतिहास अपने कठोर हाथों से करेगा
खामोशी की परत-दर-परत देखकर

मन-ही-मन डरेगा
और धूल की मटमैली चादर से
ढंक देगा—समय की बदहवासी को।

24-2-84

बर्फ की आंच

अपनी कविता को
बर्फ की आंच से सुलगा रहा था
और मेरी 'मंजु-रचना' का पेट
पतझड में भी बसंत बहार गा रहा था।
मै उसे बार-बार समझा रहा था
यह वक्त के खिलाफ है
कठोर मन—आंखों मे
बहुत बड़ा अपराध है
और वह वेझिझक—दुर्भिक्ष की तरह
पत्र-पुष्प, छाल, गाछ
सब कुछ खा रहा था
मेरी मंजु-रचना का पेट।

आप तो दयावान-दानवीर कर्ण है
आपसे पूछना भी
शायद एक मरण है
फिर भी बोलिए न
दुर्भिक्ष क्यो मंजु-रचना के
आसपास मंडराता है ?
और मेरे रोकने पर भी
हर रोज उसे भड़काता है
मेरी मंजु-रचना के पेट को !

1-6-84

सतलज का पागलपन

अपने घर-कपड़ों में खुद ही आग लगाकर
भागते-भागते थक गया हूं
और अब हर आदमी से
बुझाने का रास्ता पूछ रहा हूं
कोई भी तो ऐसा नहीं
जो अपने विश्वास के कुएं से
एक बाल्टी पानी डाल दे
लोग इतने छोटे और शकी दिमाग
क्यों हो गये हैं ?

धुएं से काली होती घर की ईंटें
सरक कर ढीला कर देती है—परकोटा
पहरेदार—सिर झुकाये खड़े हैं—बंदी मुद्रा में
बोधासिंह अपनी पगड़ी के पेंच से
आग को दबाता है
सतलज का पागलपन फिर धोने लगता है
खून डूबे नंगे खंजर
जिनकी मूठों पर—शैतान सिक्का मुस्कराता है।
क्या मेरे सांसों के स्वर्ण मंदिर को
डस जायेगा सम्प्रदाय का सांप
मैं किस गुरु-वाणी से—अब
अपने ही कपड़ों की आग बुझाऊंगा
लोग इतने शकी और छोटे दिमाग
क्यों हो गये हैं ?

मिट्टी की गंध के साथ हँसती फसलों पर
लहराता हीर-रांझे का गीत
कीकर की छाया में
रोटी-प्याज-सरसों की चटनी का
भाता वांधे—बैठी दुल्हन
पत्थर पर आंक रही है
नये स्वप्न का सुख
क्या इस स्वप्न को खा जायेगा
छोटे दिल वाला—धर्म घुन
मैं किस दीवार में—अब चुनवाऊंगा
अपने जिन्दा बेटों का अहसास !
घर का भीतर भी बहुत तेजी से
जल रहा है
कोई भी तो ऐसा नही
जो अपने विश्वास के कुएं से
एक वाल्टी पानी डाल दे
लोग इतने छोटे और शकी दिमाग
क्यो हो गये है ?

3-6-84

उजली आग

उस चमकती हुई उजली आग से
आँख मिलाकर चलना
इतना आसान नहीं है
जितना कि तुम सोचते हो।
बड़ी तेजी से नेजों की तरह
घुसती है पुतलियों में
और भीतर के रेशे-रेशे को
झुलसा कर रख देती है
चमकती हुई उजली आग।
उतरा नहीं है नशा अभी तक
उसकी चकाचौंध का
वही तो पेट के फर्नेश को
हर समय गर्म रखने के लिए
मशीनों की कर्कश चीख के साथ
दौड़ता रहता है फूलसिंह
चमकती हुई उजली आग में।

इस्पात नगरी में—आग
और नाले की तरह बहता इस्पात
हथौड़ों की आवाज
चिमनियों से
चितकबरा बन निकलता
पसीने का धुआं

और भयावह मशीनों के जंगल की चीख
मौत की हँसी हँसकर
किसी भी क्षण दबोच सकती है
व्यक्तिवाचक संज्ञा को।

यही तो काम करता है—करीम बक्स
लोहे के कवच में
बच्चों के लिए स्वप्न देखता है
उसका फुदकता दिल
एक हल्की-सी हँसी हँसते हैं
उसके नर्म होंठ
और फिर मशीनों की चीखती आवाज में
सब कुछ गुम।

इसी भीमकाय कारखाने में
लोहे की बहती नदी के मुहाने
आदमी का हँसते हुए होना
सभ्यता को चुनौती है।
लोहा आदमी की चतुराई से डरता है
और आदमी लोहे की जड़ता से

आग में नहाकर लोहा—हर क्षण
अपने गुस्से की चिनगारियां उछालता है
आदमी हथौड़ों की चोट से
खोद देता है—अपना नाम
चमकती हुई—सुनहली आग में।

5-4-85
बोकारो

पांच नम्बर कमरा—एक याद

होटल के पांच नम्बर कमरे में
एक कैदी की तरह
सुबह से शाम—घड़ी देखते-देखते
खीझ उठता है मन
कौन से सुख का आकर्षण
खींचता है सब को।
यहां सौन्दर्य की गैलरी नहीं
केवल इसका नाम एलोरा है।

मि० बोस रूम पार्टनर
नरम दिल—नाजुक मिजाज
आकाश में टहलते बादलों से
होता है जुकाम
उदासी के आलम में बदलते है करवट
रात देखे रंगीन सपने को
सुनाते है आहिस्ता-आहिस्ता।

दिन रबड़ के बिछौने से
पीठ रगड़ते-रगड़ते गुजर जाता है
शाम आस पास के फूलों की गंध से सजकर
जब घूमती है सड़क पर
एक कार कैदियों को उठाकर
ले जाती है कला केन्द्र
जहां मंच और दर्शक दीर्घा में

बराबर चलता है नाटक
मिस रूबी ने पहनी है फिसलती
गुलाबी साड़ी
मिसेज एक्स का मेकअप तो लाजवाब है
आज कौन बैठेगा—बॉस के पास
"शॉरी सर माइ वाइफ इज नोट वैल"
आप ठंडा लेंगे या गरम ?
नपी-तुली बातें—मणिपुरी हँसी
और फिर होटल का पांच नम्बर कमरा !

एलोरा इज पैराडाइज (लिखा है बोर्ड पर)
लेकिन ऐसा स्वर्ग
जहां की रात—दारू की खाली बोतलों में
चमकता पानी
और मच्छरदानी में घुसे मच्छरों को
मारकर गुजारनी पड़ती है ।

थकान के नशे में चूर
दूबे जी कहते हैं
गर्गा नदी के पुल पर
भयभीत भागती काली गाड़ियां
सड़क के नीचे आग
सड़क पर घूमते माफिया बाघ से
बचकर आई हैं
इसी एलोरा में पानी की तरह
पीयेंगी दारू—खायेंगी मुर्गा
और गुजारियें न एक रात
पी-पीकर पानी
कल सुबह तो लौटना है ।

5-4-85
एलोरा होटल बोकारो

नया आदमी

अप्रैल के आकाश का चेहरा
गुस्से से तमतमाकर
हो गया है—लाल
लू की लपटों से झुलसे पेड़
अपनी ही छाया का मरहम
लगा रहे है खुद
पसीने से लथ-पथ
कांप रही हैं—काली
लम्बी सड़कें।

अतीत के ज्वालामुखी से
लावा की तरह निकलकर
अपने पांवों की छाप
छापता हुआ
चला जा रहा है
भविष्य के नये रास्तों पर
मेरी इक्कीसवीं सदी का आदमी।
धुंधला वर्तमान—बच्चे की तरह
कभी दो कदम पीछे
और कभी
तीन कदम आगे चलता है।

झुलसती जिन्दगी के सपनों को
कला की नर्म उंगलियों से

सहला
दांव-पेंच में उलझे उजाले को
विज्ञान का नया पथ दिखा
जीवन में फैली दूरियों पर
इन्द्रधनुप का सेतु बन
रोशनी के साथ
अपनी छाप को पुख्ता करता
चला जा रहा है
मेरी इक्कीसवीं सदी का आदमी।

12-4-85

कौन सा तूफान

इसी धरती पर
अपनी उंगली से ही लिखा है
मैंने अपना नाम
देखता हूं कौन सा तूफान
मिटाता है इसे
अपने लोहे के जूतों से।

खण्ड-खण्ड होते समय के
घटाटोप में
थोड़े से विश्वासों के साथ
आज भी युद्ध करते हुए
दूर दिगन्तों की यात्रा कर
तूफान का हौसला टटोल लेता हूं
तौल लेता हूं समुद्र के
उफान की शक्ति को।

अंधेरे में भटकती घायल हवाओं को
रोशनी का सितार सौंप
देखता हूं
कौन-सा तूफान मिटाता है
जीवन के संगीत को
अपने आसमानी हौंसले से!
मिट्टी के कण-कण ने
शबनमी होठों से

छेड़ा है फिर से नया अलाप
उजड़े हुए जंगल में
जीवन लौट रहा है धीरे-धीरे
देखता हूं—कौन फिर
सूखे पत्तों की सरसराहट को
कुचल
आता है मेरे आंगन
मेरा नाम मिटाने ?

10-4-85

अहंकार

अफसोस के आंसू बहाकर
जल्दी-जल्दी लौटते पांवों को
भूख में आकंठ डूबे—घर की छाया
खींच रही थी पीछे—
ठहर कर इस व्याकरण को
फिर से पढ़ना—मौत को बुलाना है।

चलो-चलो
गोरा-चांद लौट आया होगा
स्कूल से
आज शाम शो-थीम जाना है
फालतू चाकू से
कौन काटे समय को
यह तो सुसाइड केश है—सुसाइड
डॉक्टर-दरोगा ने यही दिया है लिखकर
भूख से इस तरह
कोई सड़-गल कर मरता है!

घृणा से थूककर—लौट गई
मिसेज एस०—हवा में नचाकर
स्लीव-लैस बांहें
वीडिओ पर देखने—इवनिंग इन पेरिस।
सरकारी आवासों का—मध्यमवर्गीय जंगल

व्यक्तिगत लाभ—शुभ दर्शन है जिनका
मरता है मरे कोई—चूल्हे की ठंड से
हम तो खायेंगे उधार की हिलसा
पोतेंगे चेहरा—देखेंगे चालू फिल्में
और बैठ करेंगे चर्चा
हर रोज
यह तो सुसाइड केश है—केवल सुसाइड
भूख से इस तरह कोई
सड़-गल कर मरता है ?

12-6-85

मासी मां

मासी मां से—मौत
दूर-दूर भागती है
पूरी शताब्दी जीने का इरादा।
—दु:खी हैं बेटे-बहू
कब मरेगी आफत
—अपमान के जहरीले घूंट
पीकर चुपचाप
बीते सुख का अहसास
टटोलती है—मासी मां !

अचानक खामोशी ओढ़
सो गई मासी मां
गला फाड़ रोने लगे
बेटे-बेटी जोर से
पूरा घर दु:खान्त नाटक में डूबा था
हँसकर खेलते थे—शिशु अबोध दो
मौत से अनजान
जानते नहीं क्यों सोई है मासी मां ?

बिलख-बिलख बहुएं
मागती है माफी
कल तक मरने की करती थी
मनौती—

अड़ोस-पड़ोस सुनता है
उंगली दवा दांतों में
लेकिन चुपचाप लेटी है—मासी मां !

चिल्लाया मझला
अच्छा हुआ चली गई
खाली हुआ कमरा
फटी जेव—लम्वा जीवन
वोझ है परिवार पर
अच्छा हुआ चली गई
चुपचाप मासी मां !

कल तक मासी मां
कहती थी यह वात
वदलेगा वक्त धीरज से काम लो
उम्र का इतिहास
वताता है यही वात
यह ढांचा भीतर से
खोखला हो टूटेगा
लेकिन आज चुपचाप
लेटी हैं मासी मां !

12-6-85

पीठ सेतु

इस पीठ का सेतु
सीधा सिंहासन तक जाता है
पांवों के निशान छापते हुए
उस पार उतर जाइये
महाराज—
युगों-युगों से धनुष की तरह
झुकी पीठ ही
आपका सेतु है ! मत घबराइये !!

महाराज
अतीत के लम्बे काल खण्ड में
आपके पूर्वज—
इसी सेतु से सिंहासन तक पहुंचे है
वर्तमान में भी…
कभी भी नहीं चुभी है उभरी नुकीली हड्डियां
नर्म तलुओं में !

महाराज !
अपने आगत वंशधरों को भी
यह रास्ता दिखा जाइये।
मैं नही जानता—उस समय
यह पीठ झुकी होगी या नहीं ?

14-6-85

मछलियां—ठहरे तालाब की

इस ठहरे तालाब की
मछलियां
चालाक हो गई है।
बंशी में लगे खाद्य को खाकर
सरक जाती है
फंसती नही।

मछलीमार किनारे बैठा
सोचता है
तेज हवायें हिला नही सकती थी
ठहरे पानी को
जरूर कोई और मछली आई है।

ठहरे पानी में
दौड़ भाग से
मच जाती है उथल-पुथल
मछआरा हैरान ताकता है जाल लिये
मनमाना उद्यम मचाती है
मछलियां
इस ठहरे तालाब की।

16-6-85

एक विन्दु पर…

अब तो हमारा
उठना-बैठना
घूमना-फिरना
सोचना-बोलना
किसी एक विन्दु पर आकर
ठहर गया है।
ठहरे-ठहरे ही सारी हरकतें कर
थक जाते हैं
और सुबह के इंतजार में
रात की चरमराती खटिया पर
लेट जाते हैं।

धर्म और अतीत गौरव के
इतिहास की खिड़की खोल
एक नजर
धरती और आकाश को ताककर
उपलब्धियों पर ताली बजाते हैं
अपने ठहरेपन की प्रदर्शनी लगा
परिवर्तन की दवी इच्छा का गीत
घूम-घूमकर गाते हैं।
हम हैं—हम है के विज्ञापन की गूंज
हमारे नहीं होने का

सबसे बड़ा
सबूत होती है।

सत्य के लिए खुली जुबान
अर्द्ध सत्य बोलने में लड़खड़ाती है
मीडियो (कर) फौज के घायल सिपाही
हम न कुछ करते हैं
और न करने देते है।

अब हमारा करना-धरना
किसी एक बिन्दु पर आकर
ठहर गया है।
कागज के पतले क्षितिज पर
सूरज उगाकर—सुबह का सुख
भोग लेते है
और ठहरे-ठहरे ही
दो कदम
आसपास टहल लेते है।

15-7-85

कुछ-न-कुछ

कुछ भी महत्त्वपूर्ण
न करने का दुःख
बहुत भीतर तक तोड़ता है मुझे
इस तोड़ने के खिलाफ़
चुप बैठकर भी
मस्तिष्क कुछ-न-कुछ सोचता रहता है।

कमरे में जमी समस्याओं की
मोटी धूल के टीले
खोदकर बुहारता हूं
पोंछता हूं खिड़की के सीखचों पर
बैठी उदासी को
काले बादलों के जमघट में
सीना तानकर खड़ा इन्द्रधनुष
फुहार के झूलों पर
अपने सातों रंग मुझ तक भेजता है
मैं चाहकर भी—मन को
रंगों में डुबो नहीं पाता हूं
और चुप बैठकर भी
अपनी जड़ता के नुकीले
नाख़ून काटता हूं।

लम्बी यात्राओं का अनुभव
एड़ियों पर दर्द का इतिहास

बनकर फैल गया है
छोटे अक्षरों को पढते-पढ़ते
भीतर से पिघलकर
भींग जाती है—रोशनी की पलकें
मैं चुपचाप बैठकर भी
चेहरे पर उभरी
दु:ख की परछाइयों को
पोंछता हूं।

छोटे सुख की कल्पना का चित्र
समय की उफनती नदी में
गोते खाकर हो जाता है खंडित
विश्वास के तटों पर खड़े
रोशनी के पेड़
हाथ हिलाकर बुलाते हैं—पास
मैं चुपचाप बैठकर
सपनों को सहलाता हुआ
अपनी समझ के चाकू से
काटता हूं
आसपास छिपी—विषैली घास।

19-7-85

अकाल विजय

बुढ़िया को जुलूस में
गुड़िया सजाकर लाये थे
गांव के घावों पर
मरहम लगाने ठंडा
नये राजा की बरात जैसे
सजा था जुलूस
बज रहे थे बाजे—अकाल विजय के
मर गया था आधा गांव
अन्न-जल अभाव में।

पोपला मुंह—झुर्रियों का जमघट
कैमरे के झपकों में झांकता
भीतर का दुःख
अखबारों के चेहरों का
वही था आकर्षण

बुढ़िया आई थी जुलूस में
सुख की सौगात लेने
भूलकर भूख दुःख
सुख की सौगात लेने।

पहाड़ से भी ऊंचे मंच पर
प्रधान राजा

भाषण-आश्वासन के फूल बरसाते थे
लाठी-बन्दूकों की कड़ी चौकसी में ।
तालियों की गड़गड़ाहट—बजते हों खाली पेट
गोधूलि में लौटते—गांव का दुख
और गहरा हो गया ।

22-7-85

सजावटी-गुड्डा

ढोल-धमाकों की आवाज
गैस वत्तियों के प्रकाश में
सजा हुआ गुड्डा—लगता था
राजकुमार
बोलता था तौलकर
गंभीरता की अचकन में
चमकते थे—नकली हीरे
खानदान की खुशबू
उड़ रही थी हवा में
रौब का राठौड़ी जूता
कुचलता सच को।

गुड़िया खामोश
नापती गहराई—गुड्डे के ज्ञान की
कसौटी पर कस कर बोली
यह गुड्डा सजावटी है
आदमियत से दूर
इसकी भाषा बनावटी है।

दहेज की नदी में डूब
निकले हैं—पिता
घायल
कर्ज का गाढ़ा दूध
मां—पिलायेगी परिवार को

कोई भी तो खुश नहीं
इस खोखले बंधन से
समाज के कहकहे
चुभते हैं नेजे बन
और कोई रास्ता
नहीं है
जीवन का ?

7-8-85

यह सच

चलते रहने का अहसास
बना रहे
इसलिए—कभी आगे
और कभी पीछे चलता हूं
एक दम ठहरना
वक्त के पहले ही मरना है !

आप सुनकर हँस सकते है
अपने फटे सोफे के
गहरे गढ़े में—धंस सकते है
लेकिन यह सच—आकाश से भी
ज्यादा नंगा है
और आज
सच को सच जैसे
बोलने वाला
बहुत बड़ा लफंगा है।
इसी लफंगे का चेहरा
टूटे आइने में
बार-बार उभरता है
जिसे देखकर—मेरा
चमकदार व्यक्तित्व—डरता है।

फिर किसी चमकते अंधेरे का

पानी उतारने
'वह' इधर ही आ रहा है
उसकी फटी जेब के आर-पार
आसानी से
हाथ जाने लगा है।
एड़ी से चोटी तक पसीना बहाकर भी
होठों पर—हल्की हँसी की रेखा
खींच नहीं सकता
स्वप्न में अपने नाक का बाल बचाने
नाक को ही काट डाला
खून भीगे कपड़े और नककटा होकर रहना
वक्त के पहले ही मरना है।

उसने चुटकी बजाकर
एक और चेहरा लगा लिया
और कभी आगे
कभी पीछे घूमने लगा
बिना चेहरे के गायब होना
वक्त के पहले ही मरना है
'वह' गायब होकर
वक्त के पहले ही
मरना नही चाहता।

19-9-85

इस शहर में

इस शहर में
आकाश छूने वाले रंगीन मकान
दौड़ती गाड़ियों के पीछे
मंडराते खारे धुंएं के बादल
पांच सितारे होटलों की
चमकती कतार
फिसलते फर्श
पेट पर बंधे घुंघरुओं का नाच
डेढ़ इंच मुस्कान
और सब स्पंदन
दारू की बोतल में बंद
इस शहर में—

नामधारी साधुओं का जमघट
चेले-चेलियों की पंचमुखी फूंक
व्यापारी श्रद्धा के भक्तों की भीड़
अपने ही कल्याण का
अखण्ड हरि कीर्तन
हर मठ में
संकीर्णता के सांप का दूधिया अभिषेक
चीख-गुस्सा-प्रतिवाद
प्रतिशोध-चुप
इस शहर में

इच्छा का कम्प्यूटर
अहंकारी साहब
टिफिन कैरियर चुप
लाखों हाथ बेकार
भोंदू क्या समझेगा—चालाकी
उस्तादी !

ज्ञान-गुण वुद्धि बंदी
अपराधी
चाबुक की मार—सीखचे हैं साथी
जुलूस हड़ताल केवल नारे हैं काफी !

अब—
इस शहर में रहता हूं
जीने का दाव चुपचाप सहता हूं
हुगली के पानी में ज्वार
कभी भाटा बन बहता हूं
आदमी की तलाश में
इस शहर में
अब…!

18-9-85

कुर्सी के पेट में

हठात् हवा का झोंका
मार गया झपट्टा
उतर गई अकड़—टूट गया पाखंड
घमंडी जूतों की चरमराहट चुप
काटो तो खून नहीं—प्राणहीन देह
लकवे की चादर ने लपेट लिया सब कुछ
बौना मनिप्लांट ढूंढता है रीढ़
धंस गये छोटो काकु—कुर्सी के पेट में।

पत्नी के मारे कांपते है होंठ
अटक गई चीख दांतों की फांक में
तवाड़तोड़ उछली बेंत— उदास
कोने में बैठी
नर्म पीठ की प्रतीक्षा में
सिकुड़ गया कमरा—झुकने लगी छत
पेपरवेट गुमसुम—काला पेन चुप
मुंह फेर हंसते हैं—रेशमी आंचल
धंस गये छोटो काकु—कुर्सी के पेट में।

कागजी बाघ—दहाडता हवा में
सूंघ गया सांप—पादरी के चोंगे का
उखड़ गई खूंटी उड़ गए होश
फोन की घंटी पूछती नहीं नाम
धरती की आंच देती है ज्ञान
बच्चों के आंसू कितना बड़ा सच
फंस गये छोटो काकू—कुर्सी के पेट में।

30-10-85

इच्छा का कम्प्यूटर
अहंकारी साहब
टिफिन कैरियर चुप
लाखों हाथ बेकार
भोंदू क्या समझेगा—चालाकी
उस्तादी !

ज्ञान-गुण बुद्धि बंदी
अपराधी
चाबुक की मार—सीखचे है साथी
जुलूस हड़ताल केवल नारे हैं काफी !

अब—
इस शहर में रहता हूं
जीने का दाब चुपचाप सहता हूं
हुगली के पानी में ज्वार
कभी भाटा बन बहता हूं
आदमी की तलाश में
इस शहर में
अब…!

18-9-85

कुर्सी के पेट मे

हठात् हवा का झोंका
मार गया झपट्टा
उतर गई अकड़—टूट गया पाखंड
घमंडी जूतों की चरमराहट चुप
काटो तो खून नही—प्राणहीन देह
लकवे की चादर ने लपेट लिया सब कुछ
बौना मनिप्लांट ढूंढता है रीढ़
धंस गये छोटो काकु—कुर्सी के पेट में।

पस्ती के मारे कांपते है होंठ
अटक गई चीख दांतों की फांक में
तवाड़तोड़ उछली बेंत—उदास
कोने में बैठी
नर्म पीठ की प्रतीक्षा में
सिकुड़ गया कमरा—झुकने लगी छत
पेपरवेट गुमसुम—काला पेन चुप
मुंह फेर हँसते है—रेशमी आंचल
धंस गये छोटो काकु—कुर्सी के पेट में।

कागजी बाघ—दहाड़ता हवा में
सूंघ गया सांप—पादरी के चोगे का
उखड़ गई खूटी उड़ गए होश
फोन की घंटी पूछती नहीं नाम
धरती की आंच देती है ज्ञान
बच्चों के आंसू कितना बड़ा सच
फंस गये छोटो काकू—कुर्सी के पेट में।

30-10-85

ठहरे हुए समय को

दो जोड़ा जूते
अपनी चहलकदमी करके लौट गये
इस चिड़ियाखाने के पिंजरे में
ठहरे हुए समय को सरकाने की
कर रहा हूं चेष्टा
घड़ी की सुई उसी तरह दौड़ रही है।

पिंजरे के शोर को
ताक झांक और फुसफुसाहट ने
समेट लिया है अपनी बाहों में
चिघाड़ने वाले मुंह—उलझे हैं
ठहर समय की खामोशी से
मासूम नन्हें चूजों से बच्चे
अपनी तोता रटंत को दे रहे है—शब्द
भविष्य की अगली सीढ़ी चढ़ने।

चिड़ियाखाने के पिंजरे में
स्वेटर बनती उंगलियां
अपनी प्रेम कहानियां बुन रही है
फन्दों में—नया डिजाइन डालने
आकाश में उड़ती चिड़िया—एक सांस में
नापती है फैले क्षितिज को
मैं ठहरे समय को सरकाने की

कर रहा हूं चेष्टा
चिड़ियाखाने के पिंजरे में।

सामने की छत पर—बिखरी धूप में
रंगीन फ्राक वाली छोकरी
छिपकर—हाथ के इशारों से
पड़ोसी छोकरे को
ठहरे हुए समय को समझा रही है
हल्की आहट पर—अपने केशों को
उड़ाने लगती है—हवा में
धत्! यह भी कोई प्रेम है?

अपने देश में
प्रेम-चोरी और आक्रमण
छिपकर ही होता है
इस लुकाव-छिपाव से सहमकर
शायद समय ठहर गया है—पिंजरे में।

किसी नुक्कड़ पर
चुपचाप सच का गला घोंटकर
चोर-चोर चिल्लाओ
और रास्ते चलते शरीफ को
उंगली से दिखाओ
बरामदे के रेलिंग पर
झूलती फैशन
मुंह में आंचल दबाकर हँसेगी
पिंजर में फैली सुगबुगाहट देख
मैं ठहरे समय को
सरकाने की कर रहा हूं
चेष्टा।

20-11-85

अगला हमला

मेरे सामने ही
हरे-भरे जिन्दा पेड़ो को काटकर
बना रहे है फरनीचर
कुचल रहे है नन्हें फूलो की खुशबू को
और मैं—मौन दर्शक की तरह
सब कुछ देख रहा हूं !
ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ था !
मेरे मौन को
सब लोग—मौन होकर देख रहे है !!

काटने वाले
अब जंगल की खामोशी
और पहाड़ों की खुरदरी उमस भी
काटने जा रहे है
तेज दौड़ती मछलियां पकड़ने
नदी का वहाव भी काटेंगे।
धूप अगर वालू के कणों में
पैदा करेगी गर्मी
उसे भी घायल होकर भटकना होगा
हवा ने अपना रुख पहले ही बदल लिया है !!

मुझमें सुलगती जठराग्नि
सावधान हो जाओ
उनका अगला हमला
अब आग पर होगा।

8-2-86

होने की गंध

अंतहीन यात्राओं के टुकड़ों को
जोडकर
अपने होने की गंध महसूस करता हूं
और उदास सूखे पेड़ों की खोह में
छिपे वसंत को पुकारता हूं।

तेज भागती यात्राएं
पतझड़ में उगकर—हँसते
नये पत्तों से चुराती हैं आंखें
वसंत चाहकर भी
अपनी सीटी नहीं बजाता है
यात्राएं और छोटे टुकड़ों में बंट जाती हैं।

हर टुकड़ा—एक आईना बनकर चमकता है
जिसमें अधूरे विम्ब
पूरा होने की करते है मांग—
मैं एक जीवित नई सदी का
स्वप्न बुनता हूं
और अपनी यात्राओं के टुकड़े जोड़ने लगता हूं।

विज्ञान का क्रूर विकास फैलकर
छोटा कर रहा है आदमी का मन
पटरियों पर बिछे
टूटे पत्थरों का दर्द

और दूरियों के मौन संकेत
ढूंढ़ते है
आदमी की उंगलियों का स्पर्श ।

खिड़की के शीशे में तैरती
घायल परछाईं
यात्राओं के साथ बेतहाशा दौड़ती है
मैं फिर टुकड़ों को जोड़कर
अपने होने की गंध महसूस करता हूं ।

फैसला

सांप के फन को
कुचल कर कुदाल से
बचाया था गांव को
खुश था गवरू !

राक्षसवा मर गया
राक्षसवा मर गया
भय की चुप्पी तोड़
बोले थे होंठ आज
राक्षसवा मर गया…!

ढोल बजा नाचे थे आनन्द उल्लास से
घास घर
आंगन-चौपाल पर
राक्षसवा मर गया…!

लेकिन देखते-ही-देखते
चाट गई घास घर
आग-बबूला—आंखें
हत्या का मुकदमा चला
गांव हुआ गिरफ्तार।

कानून की कुर्सी बोली
कुदाल को फांसी की सजा
सोने की कटोरी में—पी रहा था दूध
सांप !

15-2-86

नफरत का चाकू

सम्प्रदाय का काला सांप
रूप वदल कर
अपनी पिटारी के आसपास
फन फैलाकर नाचता है
पोषक की बीन सुनकर
रेंगता है गली-गली।

कच्ची मिट्टी की दीवारों पर
जब भी थूकता है जहर अपना
आंगन के कोने-कोने में
धधकने लगती हैं—घायल चीखें
नफरत के नंगे चाकू
अबोध खून में डुबकी लगा
चाटते हैं जीवन का सुख
लाशों के गुम्बद पर मंडराते है
(मठाधीश) गिद्धनाथ
सांप धीरे से सरककर
छिप जाता है धर्म गुहा मे।

पैगम्बर-मुनि
मंत्र-आयतों से
राम-रहीम को काटने की
कला सिखाते हैं

दिमाग के विस्तृत दायरों पर
संकीर्णता की सांकल लगा
सत्ता के अपूर्व स्वाद का
राज वताते हैं।

सांप अपनी नग्नता
अंजीर के पत्तों से ढंककर हंसता है
और देखते-ही-देखते
कर्फ्यु के कवच में
कोई गांव और कोई शहर जलता है।

सभ्यता की समझ कितनी ओछी
और बौनी है
कि आज भी हम
मजहबी दरबों में सिर झुका कर
काले सांप की करते हैं पूजा
कोई भी तो मारने को
उठाता नहीं है हाथ अपना ?

28-2-86

नये बीज

जठराग्नि के ताप से सूखकर
फटती मन धरती को
एक बार फिर से
हरी-भरी करने
कुदरती जन्नत कश्मीर से
कुछ शबनम की चमकती बूंदें
लेने आया हूं।
मेरे लिए
हँसते फूल नाचती डालियां
हवा में बजता मीठा संगीत
और सफेद फैली गर्म बांहें
ऐशो-आराम और नशे में डूब जाना नहीं है।

आकाश छूने वाले
उस बर्फ ढके शिखर की तरह
मैं भी—कविता की धरती पर
ऊपर और ऊपर उठना चाहता हूं
एक बार पूरी धरती और आकाश के बीच
सेतु बन—हर आदमी को
एक जीवित स्वप्न देना चाहता हूं
इसलिए कुदरती जन्नत कश्मीर से
जीवन के नये बीज लेने आया हूं।

27-5-86
(कश्मीर)

चमकती रोशनी
हमारे साथ का साक्षी होगी
आओ बरसात में नहाते हुए चलें।

रात पूरी तरह जवान हो रही है
नारी धर्म के लिए
टिमटिमाते तारों जड़ी चूनड़ी का
निकाल लिया है घूंघट
हँसते आकाश का टुकड़ा झुककर
लहराने लगा है कंधों पर
आओ इस जवान रात में
घूम आयें साथ-साथ!

सुबह फिर
इसी माल रोड पर
तीन झुकी हुई पीठें
पानी का ड्रम लादे
पसीना भीगे पांवों के
निशान बनाती मिलेंगी
चलो—इस जवान रात में
एक सपने को साकार रूप दे आयें।

31-5-86
(शिमला)

कम्प्यूटर के इशारे पर
फिर हाथ पकड़ भागने लगा
इस वार पकड को और पुख्ता कर लिया।

वह मुझे तडप-तड़पकर
मरने नही देगा
जिन्दा उसकी शर्त पर ही रहना पड़ेगा
उसका तंत्र
मकड़ी के जाल की तरह
फैला है चारों तरफ
जिसमें मक्खियों की तरह
फंसकर
छटपटा रहे हैं—निकलने की उम्मीद में।

मैं भी एक बार फिर
उसकी पकड से निकलने की
कर रहा हूं
चेष्टा !

28-7-86

यह सड़क

घर पानी में पिघल कर
बिखरता जा रहा है
टुकड़े-टुकड़े
यही सड़क तो घर तक जाती है—

फूलों की तरह हँसते
छोटे-छोटे बादलों को
मानसून ने
मौसम के नाम निचोड़कर
डुबो दिया है—सड़क को
मासूम सपनों की मां
डूबती उतराती ढूढ़ रही है
अपनी कोख—

घायल जख्मी सड़क
आस-पास और आगे चलने वालों की पीठ पर
चिपके है काले कीचड़ के दाग
मैं कैसे बेदाग
अब घर पहुंचूंगा ?
यही सड़क तो घर तक जाती है।

बच्चों के लिए
वक्त पर ही घर पहुंचना है
बिखर कर टुकड़े-टुकड़े होती

दीवारों को
फिर से खड़ा करने
लेकिन काले दाग देख
होठ दबा हँसेंगे बच्चे
और क्या-क्या कहेंगे ?
कोई और सड़क भी तो नही है
अभी—
इसी पर ही सभल-संभल कर
चलना होगा ।

29-7-86

कैसे बचेगी खुशबू

हर कोने में
धुआं-चिनगारी-आग
हत्या-खून-अपराध
कैसे बचेगी खुशबू
गुलदस्ते की—बिना झुलसे ?

सोच—हैरान
घुटन से घुटने लगा है मन
घायल होकर भाग रही है
कल्पनाएं दूर-दूर
अंधेरा चेहरे बदल—कर रहा है हमला
अब तो रीढ़ को भी—झकझोरने लगा है
बिखरने के डर से
गुलदस्ता—ठीक से सहेजता हूं
हर कोने में जीभ फैलाये
नाच रही है लपटें
धुआं-चिनगारी-आग
कैसे बचेगी खुशबू ?

होठों की हँसी
चेहरे की चमक हो रही है गायब
हाथ से हाथ का रिश्ता बन गया है—बागी
भीगती नही पलकें—रोता नही मन

खून में नहाकर—हवा में
घूमते है हादसे
धर्म की पंखी को घुमा रहे हैं
कोढ़ी हाथ दिन रात
तवाही का ताण्डव
कैसे वचेगा गुलदस्ता
वाहों में वांध दौड़ रहा हूं
हर कोने में धुआं-चिनगारी
आग-वहुरूपी वन नाच रहे हैं
वज रहा है विध्वंसी साज
कैसे वचेगी खुशवू
गुलदस्ते की—विना झुलसे ??

1-8-86

रातों-रात बना

रातों-रात
उन्होंने बना लिया है
आलीशान नया मकान
और ठाठ से पांव पसारकर
सोते हैं
अमावस का आकाश बन चमकते हैं
ईद का चांद बन मिलते हैं।
मकान बनावट की
चारों तरफ चर्चा है
कर्ज में आकंठ डूबे देश का
यह रंगीन नक्शा है।
बड़ी तेजी से धूल उड़ाती
भागती है मोटर
खंख अटकी हो गले में
खांसना मत
मकान की चमक पर दाग लग जायेंगे
यह रातों-रात बना—नया मकान है।
इसकी परछाई
आंख की किरकिरी बन चुभती है
एक बार घुसने पर लौट नहीं पाओगे
पांवों से रौंदकर बना देंगे फर्श
आजीवन गलीचा बन बिछे रह जाओगे
यह रातों-रात बना—नया मकान है।

12-11-86

खामोशी ने सांस

पहाड़ी के फैले आंचल में
हवा के झूले पर झूलती—हरि पत्तियों को
जहरीली आग से झुलसा रहे है
मन की मुराद पूरी करने
दूर-दूर खड़े खजूर-से लम्बे पेड़।
अपनी छोटी छाया के दायरे में
खोखलेपन की खुखरी नचाकर
वजाते हैं वेंड···
खजूर पर वैठे सफेद गिद्ध
दूरवीन से आंख मारकर करते है इशारा
धरती को खण्ड-खण्ड करने की खवर
फैला देता है भाड़े का हरकारा
टूटकर गिरता है—छोटे आकाश में चमकता एक तारा
खुखरी संतरा पीकर लहराती हुई नाचती है
मासूम सपनों की छत उड़कर विखर जाती है
और जोर से भागता है भाड़े का हरकारा।

लेकिन हरि पत्तियां
खौफनाक खामोशी में भी लेती है सांस
और फंदों मे फंसो हवा के दवाव को
घायल होकर झेलती है।
अपने जख्मों पर विश्वास का मरहम लगाती
नन्हीं गुड़ियों-सी पत्तियों ने फुसफुसाकर कहा

लम्बे पेड़ की जड़ को खोदो
इसकी बदनाम छाया—बहकाकर
झूमती डालियों को लड़ाती है
रक्त बिन्दुओं पर राष्ट्रगीत गाती है
केवल इसकी जड़ को खोदो।

18-11-86

सूरज—महंगा सौदा

वे सूरज को लेकर
मेरे घर आये थे
घटाटोप अंधेरा देखकर
सहम गये
गहरी घुटन से आने लगी
ऊबकाई
घबराकर कूड़े पर रख
उल्टे पांव भागने लगे
वे सूरज को लेकर
मेरे घर आये थे।

सुपर बाजार में
सस्ते में मिला था सूरज
बड़ी संख्या में खरीदकर
भर लिया गोदाम
अब मनमाने तरीके से
करते है उपयोग।

कल रात सूरज को
तकिया बनाकर सोये थे
जलती रही गर्दन
फटने लगा माथा

लोभवश—सस्ते में महंगा पड़ा सौदा
ठगे गए भूल से—सुपर बाजार में
वे सूरज को लौटाने
मेरे घर आये थे।

18-11-86

छिपे हाथों को

सुलगते हुए बाजार से
जब भी गुजरता हूं
अंगारों की तरह उछलते हैं आलू
आधे-से ज्यादा
झुलस जाता है शरीर
देशी तरीके से जितने भी
उपचार करता हूं
विदेशीपन बचे हिस्से को भी
लपेट लेता है।
मौन दर्शक—कोई भी किसी को
बचा नहीं पा रहा है
सब खामोशी की फटी
चादर ओढ़े घूम रहे हैं
अदृश्य हाथ—इसी तरह सुलगाते रहे
घर-आंगन बाग-बगीचे
सब झुलस जायेंगे
क्या होगा नये सपनों का ?
मैं बझाने वाले छिपे हाथों को
ढूंढ़ रहा हूं।

19-11-86

कविता में सच बोलकर

कविता में सच बोलकर
कर रहा हूं अपराध
जन्म घूंटी में यही पिलाया था मुझको।

खिड़की के सीखचों से
छलांग लगाता है मंगल सूत्र
आंसुओं की आहट को
ढांपती है काली छाया
मोड़-मोड़ बैठा है अंधेरा
लाठी लिये
सपने हंसने के पहले ही
हो जाते है राख
मैं इसी राख को
सबकी थाली मे परोस रहा हूं
कविता मे सच बोलकर।

सुबह से शाम तक बिकने पर भी
खालीपन का अट्टहास
मिटा देता है हंसी
भविष्य की कल्पनायें भटकती हैं
मारी-मारी
कहीं भी पांव रखने को
जमीन नहीं है अपनी

अपने ही घर में ऐसा परायापन
नाभि से उठती तूफान बनकर
चीख
इसी चीख को कविता में बोल रहा है।

कल भी अंधेरे के खिलाफ
आज भी हूं
और आने वाली हर सदी में रहूंगा
कितने ही तम्बू तान कैद करो
मेरे सपने
अहसासों की आवाज
बवंडर बन गूजेगी
कविता लिखूगा
सदी का दस्तावेज बनने
आदमी के टूटते विश्वास को
जिन्दा करने
रोने के साथ-साथ सीखा है
हँसना मैंने
कविता मे इसी आदत को
निभाऊंगा
जन्म घूटी मे यही पिलाया था
मुझको !

20-11-86

□□

श्रीहर्ष

जन्म : सन् 1934 बीकानेर (राजस्थान)

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) कलकत्ता विश्वविद्यालय से

सम्प्रति : अध्यापन

रचनाएं : (1) समय से पहले (कविता संग्रह)

- राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत सन् 1977-78 के लिए
- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत सन् 1977-78 के लिए

(2) आदमी और आदमी (कहानी संग्रह)

(3) राजा की सवारी (कविता संग्रह)

(4) रोशनी की तलाश (कविता संग्रह)

(5) प्रतिध्वनि (हिन्दी कविताओं का बंगला अनुवाद)

(6) क माने कबूतर (कहानी संग्रह तटस्थ)

सम्पादन : वातायन, सामयिक, महानगर 66 आधुनिक साहित्य सन्दर्भ।